|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 13: छेत्रछेत्रज्ञविभागयोग

1/3 (श्लोक 1-7), रविवार, 04 सितंबर 2022

विवेचक: गीता प्रवीण रूपल जी शुक्ला

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/A0VKTPEwTJU

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को तत्व से जानना

भारतीय सनातनी परम्परा अनुसार ईश्वर स्तुति, सुरम्य दीप प्रज्वलन एवं गुरु परंपरा को नमन करते हुए अत्यंत महत्वपूर्ण **क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग** नामक अध्याय के विवेचन सत्र का आरंभ हुआ। बारहवें अध्याय में भगवान ने भक्ति योग कहा, भक्त के उनतालीस लक्षण बता दिये तो फिर यह तेरहवां अध्याय क्यों कहा? भगवान की यह मंशा थी कि जब हम भक्तियोग को समझने लगें और भक्त के कुछ लक्षण हमें स्वयं में नजर आने लगें तो कहीं हमारे अन्दर वो मान ना आ जाये कि हम ही भगवान के श्रेष्ठ भक्त हैं। भक्ति मार्ग पर आगे बढ़ते ही अज्ञानवश ही हमारे मन में यह भाव आने लगता है और यह इस मार्ग पर आगे बढ़ने की सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए भगवान ने यह योग कहा जिससे हम ये समझ सकें कि हम ही सब कुछ नहीं हैं अपितु हमें चलाने वाला तो कोई और ही है।

हरि जननी मैं बालक तेरा।

जब तक यह भाव रहेगा तब तक ही भक्ति संभव है। स्वयं को श्रेष्ठ समझने के हमारे मान को नष्ट करने के लिए भगवान ने यह अध्याय कहा। इस अध्याय में अद्वैत की बात की गई है। बारहवें अध्याय में भगवान ने सगुण साकार की बात करते हुए कहा है-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।

तब अर्जुन ने पूछा कि आपने सगुण साकार की उपासना करने वाले भक्तों को परम योगी कहा है तो निर्गुण की उपासना करने वाले भक्तों का क्या महत्व है। तब भगवान ने तीसरे श्लोक में कहा-

ये त्वमक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।

और यह कह कर भगवान ने बता दिया कि ये दोनों भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।

इस अध्याय में भगवान ने ज्ञान की बात करते हुए निर्गुण उपासना के बारे में बताया है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ क्या है इसका ज्ञान हमें इस अध्याय में प्राप्त होता है। न्याय शास्त्र में कहा गया है- **घटित बुद्धिम् प्रति घटितक्ज्ञानं कारणं।** घटित बुद्धि अर्थात जो बात घट चुकी है और उसे बुद्धि समझ चुकी है और उसे समझने का कारण क्या है। जैसे एक वाक्य में पांच शब्द है तो हम कहेंगे कि एक वाक्य घटित वाक्य है और वो पांच शब्द उसके घटक कारण हैं अर्थात हमें एक - एक पद को समझना होगा। हमें हमारी बुद्धि को समझाना होगा कि क्षेत्र हमारा शरीर है और क्षेत्रज्ञ है उसे जानने वाला।

13.1

इदं(म्) शरीरं(ङ्) कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं(म्) प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥13.1॥

श्रीभगवान् बोले - हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! 'यह' - रूप से कहे जाने वाले शरीर को 'क्षेत्र' - इस नाम से कहते हैं (और) इस क्षेत्र को जो जानता है, उसको ज्ञानी लोग 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से कहते हैं।

विवेचन - कुंती पुत्र होने के कारण अर्जुन को **कौन्तेय** कहा गया। कुंती माता का दूसरा नाम पृथा था इसलिए अर्जुन को **पार्थ** कहा गया। जब भगवान को अर्जुन पर सबसे अधिक प्रेम आता है तो वे उन्हें इस नाम से संबोधित करते हैं। शरीर को यहाँ क्षेत्र और जो इसे जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहा गया है। शास्त्रों के अनुसार इस बात को समझने के दो मार्ग है ; **व्यष्टि और समष्टि मार्ग।** व्यष्टि अर्थात् एक की बात करना और उसके अनुसार हमारा यह शरीर क्षेत्र है और समष्टि के अनुसार सभी की आत्मा को देखना अर्थात् समूह में देखना। कोई भी ज्ञान पहले हमारी बाह्य इंद्रियों को मिलता है फिर अंतर इंद्रियों को मिलता है उसके बाद हमारे मन और बुद्धि तक पहुँचता है। परन्तु उसके बाद इसे कौन जानता है? जैसे हम सो गये तो हमारी बुद्धि तो सुषुप्त अवस्था में है। फिर हमारे सोने की बात जो जानता है वह है हमारा अंतर्मन और हमारी आत्मा और वो इस बात का साक्षी है इसलिए वह क्षेत्रज्ञ है। जब हम प्रकृति और पुरुष की बात करते हैं तो प्रकृति क्षेत्र होती है। क्षेत्र का अर्थ केवल शरीर नहीं है। इसका अर्थ यहां प्रसंग अनुसार अलग - अलग लिया गया है। कहीं पर शरीर और आत्मा को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहा गया है तो कहीं प्रकृति और पुरुष को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहा गया है और जब पुरुष और ब्रह्म की बात की गई तो पुरुष को क्षेत्र कहा गया है। **क्षेत्र** के साथ जब **ज्ञ** लगकर **क्षेत्रज्ञ** बनता है तो उसका अर्थ है **क्षेत्र** को जानने वाला और प्रकृति की बात करें तो उसे कौन जानता है?

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं पृकृतेर्वशात्।।

प्रकृति की अध्यक्षता में जब सृष्टि की रचना हो रही थी तब उसे जानने वाला वो परम् ब्रह्म था वो क्षेत्रज्ञ कहलायेगा। इसी प्रकार हमारे नित्य जीवन में भी किसी को ये उपमा देनी हो तो जो छोटा हो उसे क्षेत्र और जो उससे ऊपर हो, उसे जानने वाला हो उसे क्षेत्रज्ञ कह सकते हैं। शंकराचार्य भगवान कहते हैं - **आपादतलमस्तकम्** अर्थात पैर से लेकर मस्तक तक हमारे शरीर में बाह्य और आंतरिक रूप से जो कुछ भी है उसे जानने वाला क्षेत्रज्ञ है।

13.2

क्षेत्रज्ञं(ञ्) चापि मां(म्) विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं(म्), यत्तज्ज्ञानं(म्) मतं(म्) मम॥13.2॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सम्पूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझ और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही मेरे मत में ज्ञान है।

विवेचन - पहले श्लोक में भगवान ने शरीर को क्षेत्र और जीवात्मा को क्षेत्रज्ञ कहा। यहाँ भगवान कहते हैं कि यह सब तू मुझे ही जान। यह सब मैं ही हूँ और यह बात जो तत्व से जान लेता है वही ज्ञानी है। यहाँ तत्व से जानना भगवान ने ऐसा क्यों कहा इसे एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। दो बालक हैं उनमें से एक से पूछा गया कि कोयला क्या है? एक कहता है कि एक काला सा पदार्थ है, जमीन से निकलता है। जब भट्टी में कुछ जलाते हैं तो बनता है। उससे लिखते हैं तो काला ही लिखा जाता

है। अब उससे पूछा जाये कि हीरा क्या है? तो वह कहता है कि यह बहुत महंगा और बहुत चमकदार होता है। उस बालक की दोनों बात सही है। वो इस बात को जानता है इसलिए वह ज्ञानी है। अब यही बात किसी विज्ञान के विद्यार्थी से पूछी जाये तो वह कहेगा कि कोयला और हीरा दोनों कार्बन हैं। दोनों बालक सही हैं परन्तु पहला बालक ज्ञानी है और दूसरा तत्वज्ञानी है जो केवल बाह्य शरीर को नहीं देखता। इस अंतर को समझना ही ज्ञान है।

क्षेत्र की कीमत सदैव क्षेत्रज्ञ से होती है। जैसे एक भूमि है जिस पर बाढ़ आ गई। एक व्यापारी उधर से निकलता है। वह सोचता है कि बड़ा नुकसान हो गया भूमि की हालत कैसी हो गई और चला जाता है। फिर एक किसान उधर से निकलता है वह भूमि को देख प्रसन्न हो जाता है कि बाढ़ आने से भूमि कितनी बढ़िया और उपजाऊ हो गई है और वह उसे लेकर उस पर खेती करता है। उस भूमि की कीमत व्यापारी के लिये कुछ भी नहीं है पर किसान के लिये बहुत अधिक है। अत: यहाँ भूमि का क्षेत्रज्ञ वह किसान है क्योंकि उसने उस भूमि को तत्व से पहचाना। इसी प्रकार हम सबके जीवन में एक व्यक्ति ऐसा होता है जो हमारे गुणों को पहचान कर आगे बढ़ने में हमारी मदद करता है, उनके लिये सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए। अगर हम इसे केवल अपनी योग्यता मानें तो वह कृतघ्नता होगी। कोयले और हीरे में से हीरे को पहचान कर जौहरी ही उसकी कीमत बढ़ाता है अन्यथा उसकी भी कोई कीमत नहीं होती।

हम सभी जानते हैं कि हम ब्रह्म है। परन्तु हम सभी ब्रह्म ज्ञानी क्यों नहीं बन पाते क्योंकि हमे इस बात का केवल ज्ञान है। हमनें इसे पढ़ा है पर तत्व से नहीं जाना। ब्रह्म ज्ञानी वो है जिन्हें ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है उसका स्फुरण हो जाता है। जैसे चश्मे पर धूल जमी हो तो कुछ स्पष्ट नहीं दिखता परन्तु धूल साफ करते ही सब कुछ स्पष्ट हो जाता है, वैसे ही ब्रह्म प्राप्ति है बस अंतकरण शुद्ध करने की आवश्यकता है।
कंठ चामिकरण्याय अर्थात् हमनें चश्मे को डोरी से गले में लटका रखा है और पूरे घर में ढूंढने पर भी वह नहीं मिलता। वह कहीं भी नहीं मिल सकता है। किसी के बताने पर हमें लगता है कि वह हमें मिल गया पर वह तो कभी खोया ही नहीं था। बस हमें उसका भान नहीं था और यह ज्ञान हमें गुरु से प्राप्त होता है।

एक पिताजी एक बच्ची को लेकर मोमबत्ती लेने एक दुकान में जाते हैं। बच्ची अनेक आकार की मोमबत्तियों को देख बड़ी खुश होती है और लेने की जिद करती है। तब पिताजी उसे दूसरे विभाग में ले जाते हैं जहाँ सामान्य मोमबत्तियां थीं। तो उनकी बेटी को लगता है कि पिताजी ये क्या देख रहे हैं, ये तो बिल्कुल भी सुंदर नहीं हैं परन्तु पिताजी को तो तत्व पता है कि सब मोम ही है। उन्हें तो ये देखना है कि कौन सी मोमबत्ती देर तक चलेगी और उसमें मोम कितना है। वैसे ही अध्यात्म के मार्ग पर भाव महत्वपूर्ण है। केवल नाम जप करना ही पर्याप्त नहीं अपितु उससे हमें प्राप्त क्या हुआ इसकी महत्ता है। जो ब्रह्म ज्ञानी हैं वे जानते हैं कि यह शरीर क्षेत्र है इसे चलाने वाला कोई और ही है और इस तत्व को जानना, यही ज्ञान है।

13.3

तत्क्षेत्रं(म्) यच्च यादृक्च, यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च, तत्समासेन मे शृणु॥13.3॥

वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिससे जो (पैदा हुआ है) तथा वह क्षेत्रज्ञ (भी) जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मुझ से सुन।

विवेचन - इस श्लोक में भगवान ने यह भूमिका बताई है कि वे आगे के श्लोकों में क्या बताने वाले हैं।

13.4

ऋषिभिर्बहुधा गीतं(ञ्), छन्दोभिर्विविधैः(फ्) पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव, हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥13.4॥

यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का तत्त्व- ऋषियों के द्वारा बहुत विस्तार से कहा गया है (तथा) वेदों की ऋचाओं द्वारा बहुत प्रकार से विभागपूर्वक (कहा गया है) और युक्ति युक्त (एवं) निश्चित किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी (कहा गया है)।

विवेचन - गीता अर्थात् जो भी गाया गया वह सब गीता है। भगवान ज्ञान के बारे में बताकर अब हमें आसक्ति से निकालना चाहते हैं, इसलिए वे कहते हैं कि हम केवल यह शरीर नहीं हैं। इसका अभिमान छोड़ो। यह दुःखरुप संसार है जो कुछ नहीं देने वाला है। भगवान इस अध्याय के विभिन्न श्लोकों में इस प्रकार के दुखों के बारे में हमे बतायेंगे। अगर कोई हमें कहता है कि यह मार्ग कांटों भरा है तो हम उस पर नहीं जायेंगे दूसरा मार्ग चुन लेंगे। भगवान ने यहाँ उसी लौकिक न्याय का प्रयोग किया है जिससे कि हम उस मार्ग से हट जायें।

ब्रह्म सूत्र के चार महावाक्य वेदांत में कहे गये हैं :-

अहं ब्रह्मास्मि।
तत्त्वमसि।
प्रज्ञानं ब्रह्म।
अयमात्मा ब्रह्म।

वेदांत में हम प्रस्थानत्रयी लेते हैं, अर्थात् जहाँ से अध्यात्म के प्रारंभ का और प्रस्थान का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रस्थानत्रयी की तीन कड़ियाँ हैं, भगवद्गीता, उपनिषद और ब्रह्म सूत्र। जब भी अद्वैत की बात की जाये ब्रह्म सूत्र उसमें सबसे प्रमुख है। शास्त्रों के अनुसार वेद सबसे प्रधान हैं। **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा** इस कथन से ब्रह्म सूत्र का आरंभ होता है, अर्थात् ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा मन में लाओ, उसे जानो और अब यह संसार छोड़ दो।

मीमांसा शास्त्र में छह दर्शन कहे गये हैं -

सांख्य
योग
न्याय
वैश्लेषिक
पूर्व मीमांसा और
उत्तर मीमांसा।

अलग-अलग शास्त्रों में अलग-अलग मार्ग देखने को मिलते हैं जिससे हम दिग्भ्रमित हो जाते हैं कि आखिर मुक्ति पाने के लिये हम कौन सा मार्ग अपनायें। जैसे हम एक दुकान में जाते हैं और साड़ी दिखाने को कहते हैं, परन्तु विकल्प कम होने पर हम कुछ नहीं लेते। तब हम किसी बड़े शोरूम में जाते हैं और अनेकों विकल्पों में से बहुत समय तक देखने के बाद एक साड़ी पसंद करते हैं। इसी प्रकार मुक्ति पाने का एक ही विकल्प बताया जाये तो सभी के लिये उसको अपनाना संभव नहीं होगा।

शास्त्रों में बताया गया है कि किसी ज्ञानी महात्मा से पूछा गया कि मुक्ति प्राप्त करने के कितने उपाय हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि एक मुठ्ठी में रेत को उठायें और फिर उस रेत को छोड़ें वो जितने कण हैं उससे भी ज्यादा परमात्म प्राप्ति के उपाय हैं। जिसकी जिस बात में श्रद्धा हो उसी से परमतत्व की प्राप्ति हो जाती है। एक डाक्टर ने खूब पढ़ाई करके अस्पताल खोला। हम उसे दिखाने जाते हैं। वह हमारी पूरी बात सुनता है पर उसे जितनी दवाएँ पता है वह सब नहीं लिखता, केवल हमारे रोग से संबंधित आवश्यक दवा ही लिखता है। डाक्टर और गुरु ये दोनों एक ही काम करते हैं। हमारे शास्त्र बड़े उदार हैं, हम क्या चाहते हैं उनमें उसी के अनुसार मार्ग बताया गया है। पर हमें किस मार्ग पर चलना है, यह ज्ञान हमें गुरु से प्राप्त होता है। इसलिए जीवन में गुरु का होना आवश्यक है। अन्यथा जीवन में भटकाव ही रहेगा। शास्त्रों में लिखा है कि गुरु के बिना कभी शास्त्र मत पढ़ना क्योंकि वही बताते हैं कि हमारे लिये उनमें बताये गये मार्गो में से कौन सा मार्ग सही है।

13.5

महाभूतान्यहङ्कारो, बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं(ञ्) च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥13.5॥

मूल प्रकृति और समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार, पाँच महाभूत और दस इन्द्रियाँ, एक मन तथा पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय - (यह चौबीस तत्त्वों वाला क्षेत्र है)।

विवेचन: शंकराचार्य भगवान ने **आपादतलमस्तकम्** शब्द कहा था। भगवान भी यहाँ बता रहे हैं कि क्षेत्र क्या है। इसमें क्या क्या आता है। अध्यात्म का अर्थ है अध् और आत्मा। अधिकरण के अर्थ अनुसार इसमें अध् का अर्थ है उसमें और आत्मा मतलब शरीर। इस शरीर में जो कुछ है उसे जानना अर्थात् इंद्रिय, उनके विषय, पंच ज्ञानेंद्रियाँ, पंच कर्मेंद्रियां, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार और चेतन तत्व। हम इसे ही प्रधान मानते हुए अध्यात्म का अध्ययन करते हैं। परंतु चैतन्य भी इन सभी में आता है। यहाँ इसका अर्थ शरीर में जो भी आता है उन सभी से है। भगवान यहाँ उसी का भेद बतला रहे हैं।

पंच तन्मात्राएँ होती हैं। इनकी रचना इस प्रकार होती हैः पुरुष और प्रकृति हैं और पंच महाभूत हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनमें आकाश सबसे हल्का है, उससे स्थूल वायु है, वायु से स्थूल है अग्नि, अग्नि से स्थूल जल है और जल से स्थूल पृथ्वी है। पृथ्वी स्थूलतम और आकाश सूक्ष्मतम है, इसलिए शास्त्रों में ब्रह्म की उपमा देनी हो तो आकाश की दी जाती है।

प्रकृति से ये पांच भूत अलग-अलग नहीं निकले। ये जब एक साथ होते हैं तो अदृश्य होते हैं उन्हें ही तन्मात्राएँ कहा जाता है। इसलिए बौद्ध भी कहते हैं कि शरीर तीन भूतों से बना है। क्योंकि पांच भूतों साथ आये तो वो अदृश्य हो जायेगा। इसलिए इन पंचभूतों ने अपना आधा आधा भाग ले लिया और उस बचे आधे भाग के चार हिस्से किये और बाकी चार को बांट दिये। इसे पंचीकरण कहते है। ये जब इस प्रकार बंट गये तो हमें दृश्य हो गये। तब हम उनको **पंचभूतानि** कहते हैं।

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम शरीरा।।

यह शरीर बहुत अधम है जिसे रोज शुद्ध करना आवश्यक है और ऐसे करते - करते जब ये चित्त शुद्ध हो जाता है तब उस परमात्मा का हमें दर्शन होता है। पंच महाभूत; अहंकार याने मेरा की भावना, जो हमें बतलाता है कि यह मैं हूँ, फिर बुद्धि,और फिर मूल प्रकृति। भगवान ने तीसरे अध्याय के बयालीसवें श्लोक द्वारा ये बात स्पष्ट की है ;

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रिभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

इंद्रियों से परे। **पर** शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक महान और दूसरा ऊपर। यहाँ **पर** का अर्थ है ऊपर। इंद्रियों से ऊपर मन, मन से ऊपर बुद्धि और उस बुद्धि से भी ऊपर परमतत्व है। इंद्रियों का मन से और मन का बुद्धि से भेद कम है, परन्तु बुद्धि से उस परमतत्व का भेद बहुत अधिक है इसलिए भगवान ने यहाँ **परतस्तु** कहा है। ये सब हमारे तत्व है; पंच महाभूत, अहंकार, मन, बुद्धि, अव्यक्त तत्व हमारा चैतन्य, दसों इंद्रियाँ और उनके गोचर अर्थात् विषय, वे जहाँ जहाँ जाती हैं। फिर पांच रस होते हैं जिनमें आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श, चक्षु का रुप, जिह्वा का स्वाद और नासिका का गंध होता है। आगे भगवान क्षेत्र के विषय में विस्तार से बता रहे हैं।

13.6

इच्छा द्वेषः(स्) सुखं(न्) दुःखं(म्), सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं(म्) समासेन, सविकारमुदाहृतम्॥13.6॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात (शरीर), चेतना (प्राणशक्ति) (और) धृति - इन विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया है।

विवेचन : पिछले श्लोक में तत्व के बारे में बताया गया यहाँ सब विकारों के बारे में बताया है। जिनमें सबसे अधिक होता है -

द्वेष। किसी व्यक्ति को वरदान मिला कि उसे जो कुछ मिलेगा उसका दुगना पड़ोसी को मिलेगा। आरंभ में उसने स्वीकार कर लिया। उसे एक मकान मिला तो पड़ोसी को दो मिल गये। उसे दस गाड़ी मिली तो पड़ोसी को बीस मिलीं। अब उसे द्वेष होने लगा। उसने मांगा कि मेरे घर के सभी दरवाजों पर एक कुआँ बन जाये तो पड़ोसी के हर दरवाजे पर दो कुएँ बन गये। फिर उसनें मांगा कि मेरी एक आँख फूट जाये जिससे पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जाये और वह कुएं में गिर जाये। यह द्वेष की पराकाष्ठा है जिसमें दूसरे को नुकसान पहुंचाने के लिए स्वयं को कष्ट देना भी स्वीकार्य है। यह गलत है।

13.7

अमानित्वमदम्भित्वम्, अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं(म्) शौचं(म्), स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥13.7॥

अपने में श्रेष्ठता का भाव न होना, दिखावटीपन न होना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, स्थिरता (और) मन का वश में होना।

विवेचन: आगे के चार श्लोकों में भगवान ने वो गुण बताये हैं जिनके होने पर ही यह ज्ञान प्राप्त कर पाना संभव है। बारहवें अध्याय में भगवान ने भक्त के जो गुण बताये थे उनमें नातिमानिता अंतिम गुण था।
परंतु जब ज्ञान मार्ग की बात करते हैं तो यह पहला गुण है -

अमानित्व - यह सबसे आवश्यक है। हमारे शास्त्रों में पाँच बातों से श्रेष्ठता की तुलना बताई गयी है। कोई हमसे आयु में, विद्या में, धन में ,बल में और पद में बड़ा हो तो उसे बड़ा ही मानना पड़ेगा। स्वयं में श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव होना चाहिये।
अदम्भित्वम - भगवान कहते हैं दम्भ का त्याग करो।
अहिंसा - मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार से हिंसा नहीं करना। किसी की कर्म से हिंसा नहीं की पर मन में क्रोध हो तब अपशब्द बोलना भी हिंसा है। इन सभी का त्याग करना।
क्षान्ति - क्षमाशीलता। गांधीजी कहते हैं कि हम योग्य होते हुए भी क्षमा करें तो वह क्षमाशीलता है। क्षमा करके भूल जायें तो वह वास्तविक क्षमा है।
आर्जवम - सरलता

एक धन्ना जाट था जिसके पास गाय थी। वह एक पंडित जी को रोज भगवान पर चढ़ाने के लिये एक लोटा दूध नियम से देता। जब वह पंडित जी से पूछता, कि क्या भगवान दूध पीते हैं तो पंडितजी झूठ बोल देते कि हां भगवान रोज तुम्हारे दूध का भोग लगाते हैं। एक बार पंडितजी को दस दिन के लिये बाहर जाना था तो उन्होंने दूध पहुंचाने के लिये मना किया। पर धन्ना जिद पर अड़ गया कि भगवान भूखे नहीं रहेंगे वह उन्हें दूध का भोग लगायेगा। बहुत जिद करने पर पंडितजी ने एक पत्थर उसे दिया और कहा कि रोज स्नान करके भगवान को भोग लगा देना।अब धन्ना पूरे भक्ति भाव से भगवान को भोग लगाने गया। पर भगवान ने भोग ग्रहण नहीं किया। वह इंतजार करता रहा। ऐसे तीन दिन बीत गये पर धन्ना बिना कुछ खाये पिये वहीं बैठा रहा। वह स्वयं को पापी मानते हुए दीवार पर सर पटकने लगा। दो बार उसने ऐसा किया, तीसरी बार में भगवान ने अपने हाथ उसके मस्तक के आगे लगा दिये। भगवान ने बड़े प्रेम से भोग लगाया। जब पंडितजी लौटे तो यह देखकर उसके चरणों में गिर पड़े। यह गुण भगवान को अत्यंत प्रिय है।

आचार्योपासनं - आचार्यों की सेवा करना।
शौचं - शरीर की बाह्य और आंतरिक शुद्धता।
स्थैर्यमात्म - अंतःकरण की स्थिरता। एक बार कोई कार्य शुरू करने के बाद उसे छोड़ना नहीं।
विनिग्रह - मन सहित इंद्रियों का निग्रह। इंद्रियों पर नियंत्रण रखना।

अंत में हरीनाम संकीर्तन से आज के सत्र का समापन हुआ।

ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु।:

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||